चौबीस तीर्थंकर पुराण

आशीर्वाद

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि

प्रेरक

श्री १०८ उपाध्याय जयभद्र महाराज

सम्पादिका

श्री १०५ आर्यिका सुमंगलाश्री माताजी

भाषानुवाद

पन्नालालजी साहित्याचार्य

प्रकाशक

श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास

नागपुर (महा.)

श्री वीतरागाय नम:

चौबीस तीर्थंकर पुराण

भगवान श्री आदिनाथ

स विश्वचक्षु वृंषभोऽर्चित:सतां समग्र विद्यात्मवपु र्निरंजन : ।

पुनातू चेतो मम नाभिनन्दनो जिने जित क्षुल्लक वादिशासन :।

च्सबको देखने वाले, सज्जानों से पूजित, समस्त विद्यामय, पाप रहित तथा क्षुद्र वादियों केशासनों को जीतने वाले नाभिनन्दन भगवान श्री ऋषभनाथ हमारे ह्रदयको पवित्र करें ।

इस मध्यालोक में असंख्यात द्वीप समुद्रों से घिरा हुआ , एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है । यह जम्बूद्वीप सब द्वीपों में पहला द्वीप है और अपनी शोभा से सब में शिरमौर है । इसी चारों ओर से लवण समुद्र घेरे हुए है । लवण समुद्र केबीच समुद्र में यह जंम्बूद्वीप ठीक कमल केसमान मालूम होता है , क्योंकी कमल केनीचे जैसे पीली कर्णिका होती है वैसे ही इसपर सुवर्णमय पीला मेरू पर्वत है और कलम की कर्णिका पर जिस प्रकार काले भौरे मंडराते रहते - है उसी प्रकार मेरु पर्वत की कर्णिका पर भी काले काले मेघ मंडराते रहते है । हिमवान महाहिमवान, निषध नील, रुक्मी और शिखरी ये छ: कुलाचल जम्बूद्वीप की शोभा बढ़ा रहे है । ये छहों कुलाचल पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हैं । अनेक तरह के रत्नों से जडे हुए है और अपने उत्तुंग शिखरों से गगन को चूमते है । इन छह अंचलों केकारण जम्बूद्वीप केसात विभाग अर्थात् क्षेत्र हो गये हैं । उनकेनाम ये है भरत, हैमवत,हरि,विदेह,रम्यक,हैरण्यवत और ऐरावत । इन्हीं क्षेत्रों में हमेशा लहराती हुई गंगा,सिन्धु आदि चौदह महा नदियां बहा करती है । विदेह क्षेत्र ठिक बीच में एक लाख योजन ऊंचा सुर्वणमय मेरु पर्वत है। वह पर्वत अपनी उन्नत चूलिका से स्वर्ग केविमानों को छूना चाहता है । नंदन, सौमनस, भद्रशाल और पाण्डुक बन से उसकी अपूर्व शोभा बढ़ रही है । जिनेन्द्र भगवान के, जन्माभिषेक केसुरभित सलिल से उस पर्वत का प्रत्येक रजकण पवित्र है । सूर्य, चन्द्रमा आदि समस्त ज्योतिषी देव उसकी प्रदिक्षण देते रहते है ।

उसी विदेह क्षेत्र में मेरू पर्वत से पश्चिम की ओर एक बांधिल देश है । वह देश खूब हरा-भरा है । जहां पर रहने वाले लोग किसी भी बात से दुखी नहीं है । जहां पर धान्य केखेतों रक्षा करने वाली बालिकाओं केसुन्दर संगीत सुनकर हरणि चित्रलिखित से निश्चल हो जाते है । जहां केमनोहर बगीचे में रसाल आदि वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए कोयल, कीर.क्रौंच आदि पक्षी तरह-तरह केशब्द करते है । उस बांधिल देश में एक विजयार्ध पर्वत है । जो अपनी धवल कान्ति से ऐसा मालूम होता है , मानो चांदी से बना हुआ हो । उस पर्वत पर अनेक सुन्दर उद्यान शोभायमान है । उद्यानों केलता गृहों में देव देवांगनायें विद्याधर और विद्याधरियां अनेक तरहकी क्रीडा किया करती है । उसकी शिखरें चन्द्रकान्त मणियों से खचित हैं इसलिये रातकेसमय चन्द्रमाकि किरणों का सम्पर्कहोने पर उनसे सुन्दर निर्झर इ

ारने- लगते है । उस पर्वत की तराई मे आमके ऊंचे-ऊंचे पेड़ लगे है । हवा के हलके झोंके लगने- से उनसे पके हुए फल टूट-टूट कर नीचे गिरे जाते है और उनका मधुर रस सब ओर फैल जाता है । उस पर्वत उत्तर की श्रेणी में अलका नामकी सुन्दर नगरी हैं । वहा अलका नगरी अगाध जल से भरी हुई परिखा से शोभायमान हैं । अनेक तरह के रत्नों से जडी हुई है । वहांका प्राकारकोट इतना ऊंची है कि रात के समय उसकी उन्नत शिखरों पर लगे हुए तारागण मणिमय दीपकों की तरह मालूम होते हैं । वहांके ऊंचे ऊंचे मकान चूने से पुते हुए है इसलिये वे शरद ऋतु के बादल के समान मालूम होता है । उन मकानों की शिखरों में अनेक तरह के रत्न लगे हुए है जो बरसात के बिना ही मेघ रहित आकाश में इन्द्र धनुषकी छटा छिटकाते रहते है। वहां गगनचुम्बी जिन मन्दिरों में नाना प्रकार के उत्सव होते रहते है । कहीं तालाबों में फुले हुए कमलों पर भ्रमर गुज्जार करते है । कहीं बगीचों में बेला,गुलाब चम्पा जूही आदिकी अनुपम सुगन्धि फैल रही है । कही शरद के मेघ के समान सफेद महंलों की छतोंपर विद्याधरांगनाये बिजली जैसी मालुम होती है । कही पाठशालओं में विद्यार्थियों की अध्ययन ध्वनि गूंज रही है और कहीं विद्वानों में सुन्दर तत्व चर्चाएं होती है । कहीं भी कोई खाने पीने के लिये दुखी नहीं है सभी मनुष्य सम्पत्ति से युक्त है और बाल बच्चों से विभूषित है अलका,अलका ही है - उसका समस्त वर्णन करना लेखनीसे बाहर है ।

जिस समयकी कथा लिखि जाती है उस समय अलका का शासनसूत्र महाराज अतिबल के हाथ में था। उस वक्त की अतिबल जैसे वीर, पराक्रमी, यशस्वी,दयालु ओर नीतिनिपुण राजा पृथ्वीतल पर अधिक नहीं थे । उन की नीती निपुणता और प्रजावत्सलता सब और प्रसिध्द थी । वे कभी सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी होकर शुत्रओं को संताप पहुंचाते थे और कभी चन्द्रमा की भांति शान्त वृत्ति से प्रजा का पालन करते थे । उनकी निर्मल कीर्ती चारों ओर फैल रही थी। अतिबल के व्यक्तित्व के सामने सभी विद्यार नरेश अपना माथा झुका देते थे । वे समुद्र से गम्भीर थे , मेरु से स्थिर, बृहस्पति से विद्वान थे , और थे, सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी । महाराज अतिबल की स्त्रीका नाम मनोहरा था । मनोहरा का जैसा नाम था वैसा ही उसका रुप भी । उसके पावं कमल के समान सुन्दर थे और नाखून मोतियो से चमकते थे । जंघायें कामदेव की तरकस के सदृश मालूम होती थी और स्थूल ऊरु केले के स्थम्भ से भी भली थी । उसका विस्तृत नितम्बस्थल बहुत ही मनोहर था । मनोहरा की गम्भीर नाभि श्यामला रोम राजि और कृश कमर अपनी शानी नहीं रखती थीं । उसके दोनों स्तन श्रृङ्गार सुधासे भरे हुये सुर्वण कलशकी नांई मालूम होते थे । भुजायें कमलिनी के समान मनोहर थी और हाथ कमलों की शोभा को जीतते थे । उसका कंठ शंख सा सुन्दर था । ओष्ठ प्रवाल से और दांत मोती से लगते थे । उसकी बोली सामने कोयल भी लजा जाती थी। तिलक पुष्प उसकी नाक की बराबरी नहीं कर सकता था । वह अपनी चंचल और बडी आंखों से हरिणियों को जीतती थी । उसकी भौंहें काम के धनुषके समान थी । कुम्कुम के तिलक से उसके ललाट की अनूठी ही शोभा बडी ही विचित्र थी । मनोहार के मुंह के समान पूर्णिमा के

चन्द्रमा को भी मुंहकी खानी पडी़ थी । उसका सारा शरीर ताये हुये सुर्वण की तरह चमकता था । कोई उसे एकाएक देखकर विद्याधरी कहने का साहस नहीं कर पाता था । सचमुच वह मनोहरा अद्वितीय सुन्दरी थी । राजा अतिबल रानी मनोहरा के साथ तरह के सुख भोगते हुये सुख से समय बिताते थे ।

कुछ समय बाद मनोहरा की कुक्षि से एक बालक उत्पन्न हुआ । बालक के जन्मकाल में अनेक शुभ शकुन हुये । राजाने दीन दरिद्रों के लिये किमिच्छक दान दिया और प्रजा ने अनेक उत्सव मनाये । बालक की वीर चेष्टायेँ देखकर राजा ने उसका नाम महाबल रख दिया । बालक महाबल द्वितिय के चन्द्रमा की तरह प्रतिदिन बढ़ने लगा । उसकी अद्‌भुत लीलायें और मीठी बोली सुनकर मां का ह्रदय फूला न समाता था । उसकी बुध्दी बड़ी तीक्ष्ण थी । इसलिये उसने अल्प वयमें ही समस्त विद्यायें सीख ली । पुत्र की चतुराई और नीति निपुणता देखकर राजा अतिबल ने उसे युवराज बना दिया और आप बहुती कुछ निश्चिन्त होकर धर्म ध्यान करने लगे ।

एक दिन कारण पाकर अतिबल महाराज का ह्रदय संसार से विरक्त हो गया । उन्हें पंच इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर और दु:खदाई मालूम होने लगे । बारह भावनाओं का विचार कर उन्होंने जिनदीक्षा धारण करन का दृढ़ निश्चय कर लिया । फिर मंत्री सामन्त आदिके सामने अपने विचार प्रगट करके युवराज महाबल को राज्य तथा अनेक तरह के धार्मिक और नैतिक उपदेश देकर किसी निर्जन बन में जिनदीक्षा धारण कर ली थी । इनके साथ में अनेक विद्याधर राजाओं ने भी जिनदीक्षा ली थी । उधर आत्मशुध्दी के लिये अतिबल महाराज कठिन से कठिन तप करने लगे और इधर महाबल भी नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा । महाबल की शासन प्रणाली पर समस्त प्रजा मुग्धचित्त थी । धीरे धीरे महाबल का यौवन उसका सुन्दर रुप देखकर स्त्रियों का मन काम से आकुल हो उठता था । निदान, मन्त्री आदि की सलाहसे योग्य कुलीन विद्याधर कन्याओं के साथ उसका विवाह हो गया अब राजा महाबल धर्म,अर्थ और काम का समान रुप से सेवन करने लगा । इसके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुध्द नामके चार मन्त्री थे । ये चारों मन्त्री राज्य कार्यमें बहुत ही चतुर थे राजा जो भी कार्य करता था वह मन्त्रियोंकी सलाह सेही करता था । इसलिए उसके राज्यमें किसी प्रकारकी बाधायें नहीं आने पाती थी । ऊपर जिन चार मन्त्रियों का कथन किया है उसमें -स्वयंबुध्द को छोड कर बाकी तीन मन्त्री महा मिथ्यादृष्टि थे इसलिए वे महाबल तथा स्वंयबुध्द आदिके साथ धार्मिक विषयोंमें विद्वेष रखा करते थे । पर महाबल को राजनीति में उनसे कोई बाधा नहीं आती थी । स्वयंबुध्द मन्त्री सच्चा जिनभक्त था वह हमेशा महाबल के हित चिंतन में लगा रहता था ।

किसी समय अलकापुरी में राजा महाबल की वर्ष गांठका उत्सव मनाया जा रहा था । बाजों के शब्दों से आकाश गूंज रहा था और चारों ओर स्त्रियों के सुन्दर संगीत सुनाई पड़ रहे- थे । एक विशाल सभामण्डप बनवाया गया था जिसकी सजावट के सामने इन्द्रभवन की भी सजावट फीकी लगती थी। उस मण्डप में सोने के एक ऊंचे सिंहासन पर महाराज महाबल बैठे हुए थे । उन्हीं के आस पास मन्त्री लोग भी

बैठे थे । और मण्डप की शेष जगह दर्शकों से खचाखच भरी हुई थी । लोंगो के हृदय आनन्द से उमड़ रहे थे । विद्वानों के व्याख्यान और तत्व चर्चाओं से वह सभा बहुत ही भली मालूम होती है। समय पाकर महामति, संभिन्नमति और शतमति मन्त्रियों ने अनेक कल्पित युक्तियों से जीव, अजीवक खण्डन कर दिया , स्वर्गमोक्ष का अभाव बतलाया तथा मिथ्यात्व को बढांनेवाली अनेक विपरीत क्रियाओं का उपदेश दिया जिससे समस्त सबा में क्षोभ मच गया और लोग आपस में काना फुंसी करने लगे । यह देख राजा से आज्ञा लेकर स्वयंबुध्द मन्त्री खडे हुए । स्वयंबुध्द ने अनेक युक्तियों से सब लोक मोहित हो गए और धन्य धन्य करने लगे । इसी समय स्वयंबुध्दी पाप और धर्मका फल बताते हुए राजा महाबल को लक्ष्य कर चार कथायें कहीं थी जो संक्षेप में नीचे लिखी जाती है ।

राजन् ! कुछ समय पहले आप के निर्मल वंश में एक अरविन्द नाम के राजा हो गये है । उनकी स्त्री का नाम विजया देवी था । विजया के दो पुत्र थे पहला हरिश्चंन्द्र औ दूसरा कुरुविन्द ये दोनों पुत्र बहुत ही विद्वान थे । राजा अरविन्द दीर्घसंसारी जीव थे । इसलिये उनका चित्त हमेशा पाप कर्मो में ही लगा रहता था औ इसीके फलस्वरुप वे नरक आयु का बंध कर चुके थे । आयु के अन्त समय अरविंद को दाहज्वर हो गया जिसकी दाह से वे बहुत व्याकुल होने लगे । रोग की बहुत कुछ चिकित्सायें की गई पर उन्हें आराम नहीं हुआ । पाप के उदय से उनकी समस्त विद्यायें भी नष्ट हो गयी थी । उन्होंने उत्तर कुरुक्षेत्र के सुहावने बगीचेमें घूमना चाहा परन्तु आकाशगामिनी विद्या के नष्ट हो जाने से उन्हें लाचार हो रुक जाना पडा । बडे पुत्र हरिश्चन्द्र ने अपनी विद्या से उन्हें उत्तर कुरु भेजना चाहा पर जब उसकी भी विद्या सफल नहीं हुई तब राजा हताश हो शय्यापर पड़ा रहा ।

एक दिन दीवाल पर दो छिपकुली लड़ रही थी । लड़ते लड़ते उनमें से एककी पूंछ टूट गई जिस से खूनकी दो चार बूदें राजा के शरीर पर पड़ी । खूनी की बूंदो के पडते ही राजा को कुछ शान्ति मालूम हुई । इसलिये उसने समझा कि यदि हम खून की बावड़ी में नहावें तो हमारा रोग दूर हो सकता है । यह विचार कर लघु पुत्र कुरुविन्द से खूनकी बावडी बनवाने के लिये- कहा । कुरुविन्द, पिताका जितना आज्ञाकारी था उससे कहीं अधिक धर्मात्मा था । इसलिए उसने पिताकी आज्ञानुसार एक बावड़ी बनवाई उससे कही अधि धर्मात्मा था । इसलिए उसने पिताकी आज्ञानुसार एक बावड़ी बनवाई पर उसे खून से न भर कर लाखके लाल रंग से भरवा दिया , और पिता से, जाकर कह दिया कि आप के कहे अनुसार बावड़ी तैयार है । खून की बावड़ी देखकर राजा अरविन्द बहुत ही हर्षित हुए और नहाने के लिए उसमें कूद पड़े । पर ज्योंही उन्होंने कुल्ला किया त्योही उन्हें मालूम हो गया कि वह खून नहीं किन्तु लाखका रंग है । कुरू विन्द के इस कार्य पर उन्हं इतना क्रोध आया कि वे तलवार लेकर उसे मारने के लिए दौडे पर बीमारी के कारण अधिक नहीं दौड़ सके इसलिए बीच में ही अपनी तलवारपर गिरे पड़े । तलवार की धार से राजा का उदर विर्दिण हो गया जिससे वे मरकर नरकगति में जा पहुंचे । सच है, मरते समय प्राणियों के जैसे अच्छे बुरे भाव होते है वे वैसी ही गति को प्राप्त होते हैं ।

(२)

नरेन्द्र ! कुछ समय पहले आप के इसी वंश मे एक दण्ड नाम के राजा हो गये है जिन्होंने अपने प्रचण्ड पराक्रम से समस्त विद्याधरों को वशमें कर लिया था । यद्यपि राजा दण्ड शरीर से बूढे हो गये थे । तथापि उनका मन बूढ़ा नहीं था । वे रात दिन विषयों की चाह में- लगे रहते थे । उनके एक मणिमाली नामका आज्ञाकारी पुत्र था । जीवन के शेष समय में राज्यका भार मणिमाली को सौप कर आप अंत:पुर में रहने लगे और अनेक तरह के भोग भोगने लगे । किसी समय तीव्र संक्लेश भावसे राजा दण्ड का मरण हो गया । मरकर वे अपने भण्डार में विशालकाय अजगर हुए । वहा अजगर मणिमाली ने इस अजगर का हाल किसी मुनिराज से कहा । मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि यह अजगर आप के पिता दण्ड विद्याधर का जीव है । आर्तध्यान के कारण उन्हें कुयोनि प्राप्त हुई है । यह सुनकर मणिमाली झट से भण्डार में गया और वहां अजगर के सामने बैठकर उसे ऐसे ढंग से समझाने लगा कि उसे अपने पूर्व भवका स्मरण हो गया और विषयों की लालसा छूट गई । पुत्र के उपदेश से उसने सब बैरभाव छोड दिया तथा आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मरण कर देव पर्याय पाई । स्वर्ग से आकर देव ने मणिमाली के गले में मणियोंका एक सुन्दर हार पहिनाया था जो कि आज भी आपके गले मे शोभायमान है । सच है- विषयों की अभिलाषी से मनुष्य अनेक तहर के कष्ट उठाते - है और विषयों के त्याग से स्वर्ग आदि का सुख पाते है ।

(३)

राजन् ! आप के बाबा शतबल भी चिरकाल तक राज्य -सुख भोगने के बाद आपके पिता अतिबल के लिये राज्य देकर धर्मध्यान करने लगे थे और आयु के अन्त में समाधि पूर्वक शरीर छोड़ कर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुए थे । आपको भी ख्याल होगा जब हम दोनों मेरू पर्वत पर नन्दन बन में खेल रहे थे , तब देव शरीरधारी आपके बाबा ने कहा था कि च जैन धर्मको कभी नहीं भूलना यही सब सुखों का कारण है । छ

(४)

इसी तरह आप के पिता अतिबल के बाबा सहस्त्रबल भी शतबल के लिये राज्य नग्न दिगम्बर हो गये और कठिन तपस्याओं से आत्म -शुध्दी कर शुक्ल ध्यान के प्रताप से परमधाम मोक्षस्थान को प्राप्त हुए थे । ये कथाएं प्राय: सभी लोगों के परिचित और अनुभूत थीं इसलिये स्वयंबुध्दी मन्त्री की ओर किसी को अविश्वास नहीं हुआ । राजा और प्रजा ने स्वयंबुध्दी का खूब सत्कार किया । महामति आदि तीन मन्त्री के उपदेश से जो कुछ विभ्रम फैल गया था वह स्वयंबुध्द के उपदेश से दूर हो गया था । इस तरह राजा महालब की वर्षगांठ का उत्सव हर्षवध्वनी के साथ समाप्त हुआ ।

एक दिन स्वयंबुध्द मन्त्री अकृत्रिम चैत्यालयों की बन्दना करने के लिये मेरु पर्वत पर गये और वहां पर समसत चैत्यालयों के दर्शनपर अपने आपको सफल भाग्य मानते हुए सौमनस बन में बैठ ही थे कि इतने में उन्हें पूर्व विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत कच्छ देश के अनिष्ट नामक नगर से आये हुए दो मुनिराज

दिखाई पड़े । उन मुनियों में एक का नाम आदित्यमति और दूसरेका अरिंजय था । स्वयंबुध्दी ने खड़े होकर दोनों मुनिराज तत्वों का स्वरुप कह चुकेतब मन्त्रीने उनसे पूछा-

च्हे नाथ ! हमारी अलका नगरी में सब विद्याधरों का अधिपति जो महाबल नामका राजा राज्य करता है वह भव्य है या अभव्य ? छ मन्त्री का प्रश्न सुनकर अदित्यमति मुनिराज ने कहा कि हे सचिव ! राजा महाबल भव्य है क्योंकि भव्य ही तुम्हारे वचनों में विश्वास कर सकता है । तुम्हे महाबल बहुत ही श्रध्दा की दृष्टी से देखता है । वह दशवें भव में जम्बूद्वीप केभरत क्षेत्र में युगका प्रारम्भ होने पर ऋषभनाथ नाम का पहला तीर्थकर होगा । सकल सुरेन्द्र उसकी सेवा करेंगे और वह अपने दिव्य उपदेश संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण करेगा । वही उसकेमुक्त होनेका समय है । अब मै महाबल केपूर्वभव का वर्णन करता हूं जिसमें कि इसन सुख भोगने की इच्छा से धर्मका बीज बोया था । सुनिये पश्चिम विदेह में श्री गन्धिल नामका देश है और उसमें सिंहपूर नाम का एक सुन्दर नगर है । वहां किसी समय श्रीषेण राजा नामका राज्य करते थे उनकी स्त्री का नाम सुन्दरी थी । श्रीषेण केजयवर्मा ओर श्रीवर्मा नाम केदो पुत्र थे ।

उनमें श्रीवर्मा नाम का छोटा पूत्र सभी को प्यारा था । राजा ने प्रजा के आग्रह से लघु पुत्र श्रीवर्माकेलिये राज्य दे दिया और आप धर्मध्यान में लीन हो गये । ज्येष्ठ पुत्र जयवर्मा से अपना यह भारी अपमान नहीं सहा गया इसलिए वहा संसार से उदास होकर किसी बन में दिगम्बर मुनि हो गया और विषय भोगों से विरक्त होकर उग्र तप तपने लगा । एक दिन जहां पर जयवर्मा मुनिराज ध्यान लगाये हुए बैठे थे, वहीं सै आकाश में विहार करता हुआ कोई विद्याधरों का राजा आ निकला । ज्योंही जयवर्मा की दृष्टी उसपर पड़ी त्योंही उसे राजा बनने की अभिलाषाने फिर धर दबाया । उधर जयवर्मा विद्याधर राजा केभोगों की प्राप्ति में मन लगा रहे थे इधर वामी से निकले हुए एक सांपने उन्हें डस लिया । जिसमें वे मरकर महाबल हुए है । पुर्वभव की वासना से महाबल अब भी रात दिन भोगों में लीन रहा करता है ।

(४)

इस प्रकार पूर्वभव सुनाने केबाद मुनिराज आदित्यमति ने स्वयंबुध्द मंत्री से कहा कि आज राजा महाबल ने स्वप्न देखे है कि मुझे सभिन्न मति आदि मंन्त्रियों ने जबरदस्ती कीचड़मे गिरा दिया है फिर स्वयंबुध्द मन्त्री ने उन दृष्टों की धमकाकर मुझे कीचड़ से निकाला और सोनेकेसिंहासन पर बैठाकर निर्मला जल से नहलाया है, तथा एक दीपक की ज्वाला प्रतिक्षण क्षीण होती जा रही है । महाबल इन स्वप्नों का फल तुम से अवश्य पूछेगा सो तुम जाकर पूछने- केपहले ही तो कह दो कि पहले स्वप्नसे आपका सौभाग्य प्रकट होता है और दूसरे स्वप्नसे आपकी आयु ऐक माहकी रह गई मालूम होती है । ऐसा करनेसे तुम्हारे ऊपरउसका दृढ़ विश्वास हो जावेगा तब तुम उसे जो भी हितका मार्ग बतलाओगे उसे वह शीघ्र ही स्वीकर कर लेवेगा । इतना कह कर दोंनो मुनराज आकाश मार्ग से विहार कर गये और स्वयंबुध्द मन्त्री भी हर्षित होते हए अकालपुरी को लौट आये । वहां राजा महाबल स्वयंबुध्द की

प्रतीक्षा कर रहे थे - तो स्वयंबुध्द ने शीघ्र ही जाकर उनके दोनों का फल जैसा कि मुनिराज वे बतलाया था , कह सुनाया तथा समयोपयोगी और भी धार्मिक उपदेश दिया । मन्त्रीके कहने से महाबल को दृढ़ निश्चय हो गया कि अब मेरी आयु सिर्फ एक माह बाकी रग गई है । वह समय अष्टान्हिक व्रतका था इसलिए उसने जिन मन्दिर मे आठ दिन तक खूब उत्सव किया और शेष बाईस दिन का सन्यास धारण किया । उसे सन्यासी विधि स्वयंबुध्द मन्त्री बतलाते थे । अन्तमें पंच नमस्कार मंत्र का जाप करते हुए महाबल ने नश्वर मनुष्य शरीर का परित्याग कर ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में देव पर्याय का लाभ किया । वहां उसका नाम ललितांग था । जब ललितांग देवने -

अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव का विचार किया तब उसने स्वयंबुध्द का अत्यन्त उपकार माना और अपने ह्रदय मे उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की । पूर्वभव के संस्कार उसने वहां पर भी जिनपूजा आदि धार्मिक कार्यों मे प्रमाद नहीं किया था । इस प्रकार ऐशान स्वर्ग में स्वयंप्रभा, कनकलता, विद्युल्लता आदि चार हजार देवियों के साथ अनेक प्रकार के सुख भोगते हुए ललितांग देव का समय बीतने लगा । ललितांग की आयु अधिक थी इसलिये उसके जीवन में अल्प आयु वाली कितनी ही देवियां नष्ट हो जाती थी और उनके स्थानमे दूसरी देवियां उत्पन्न हो जाती थीं । इस तरह सुख भोगते हुए ललितांग की आयु जब कुछ पल्योंकी शेष रह गई तब उसे एक स्वंयप्रभा नामकी देवी प्राप्त हुई थी । ललितांग को स्वयंप्रभा सी सुन्दरी देवी जीवन भर न मिली थी इसलिये वह उसे बहुत चाहता था और वह भी ललितांग को बहुत अधिक चाहता थी । दोनों एक दूसरे पर अत्यन्त मोहित थे । परन्तु किसीके सब दिन एकसे नहीं होते । धीरे धीरे ललितांग देव की दो सागर की आयु समाप्त होने को आई । जब उसकी आयु सिर्फ छह माह की ही बाकी रह गई तब उसके कंठ में पडी हुई माला मुरझा गई, कल्प वृक्ष कान्ति रहित हो गये- और मणि मुक्ता आदि सभी वस्तुएं प्राय: निष्प्रभ सी हो गई हो यह सब देखकर उसने समझ लिया कि मेरी आयु अब छह माह की ही बाकी रह गई है । इसके बाद मुझे अवश्य ही नरलोक में पैदा होना पडेगा । प्राणी जैसे काम करते हैं वैसा ही फल पाते है । मैंने अपना समस्त परम आवश्यक है । यह विचार कर पहले ललितांग देवने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना की फिर अच्युत स्वर्ग में स्थित जिन प्रतिमाओं की पूजा करता हुआ समात सन्तोष से समय बिताने-लगा । अन्तमें सनाधि पूर्वक पंच नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए उसने देव शरीर को छोड़ दिया । जम्बूद्वीपके सुमेरु पर्वत से पूर्व की ओर विदेह क्षेत्र में एक पुष्कलावती देश है उसकी राजधानी उत्पलेखट नामकी नगरी है । उस समय वहां वज्रबाहू राजा राज्य करते थे । उसकी स्त्री का नाम वसुन्धरा था । राजा बज्रबाहु वसुन्धरा रानी के साथ भोग भोगते हुए इन्द्र-इन्द्राणी की तरह आन्दन से रहते थे । जिसका कथन ऊपर कर आये हैं वह ललितांग देव स्वर्ग से चयकर इन्हीं वज्रबाहु और वसुन्दरा राजा दम्पती के वज्रजंघ नामका पूत्र हूआ । वज्रजंघ अपनी मनोरम चेष्टाओं से सभी को हर्षित करता था । वह चन्द्रमाकी नांई मालूम होता था क्योंकि चन्द्रमा जिस तरह कुमुदों को विकसित करता है उसी तरह बज्रजंघ भी अपने कुटुम्बी कुमुदों को

विकसित हर्षित करता थां चन्द्रमा जिस तरह कलाओं से शोभित होता है उसी तरह बज्रजंघ भी अनेक कलाओं चतुराइयों से भूषित था । चन्द्रमा जिस प्रकार कमलों को संकुचित करता है उसी प्रकार वह भी शत्रुरुपी कमलों को संकुचि शोभाहीन करता था और चन्द्रमा जिस तरह चांदनीसे सुहावना जान पड़ता है उसी तरह बज्रजंघ भी मुसकान रुपी चांदनीसे सुहावना जाना पड़ता था । ललितांगका मन स्वयंप्रभा देवी में आसक्त था , इसलिए वह किसी दूसरी स्त्रियोंसे प्रेम नहीं करता था । बस उसी संस्कार से वज्रजंघ का चित्त किसी दूसरी स्त्रियों की ओर नहीं झुकता था । उसने-जवान होकर भी अपना विवाह नहीं करवाया था । वह हमेशा शास्त्रोंकेउध्ययन तथा किसी नई चीज की खोज में लगा रहता था ।

अब स्वंयप्रभा, जिसे कि ललितांग देव छोड़कर चला आया था, का उपाख्यान सुनिये । प्राणनाथ ललितांग देवकेमरने पर स्वंयप्रभा को बहुत खेद हुआ, जिससे वह तरह तरह केविलाप करने लगी । यह देखकर एक दृढ़वर्मा जो कि ललितांग का घनिष्ट मित्र था, नाम केदेवने उसे खूब समझाया और अच्छे अच्छे कार्यो का उपदेश दिया । उसकेउपदेश से स्वंयप्रभा ने पति विरह से उत्पन्न हुए दु:ख को कुछ शान्त किया और अपने शेष जीवन केछह माह जिन पूजन,नित्य वन्दन आदि शुभ कर्मो में व्यतीत किये । मृत्यु के समय सौमनस वन मे शोभित किसी चैत्य वृक्षके नीचे पंच परमेष्ठी का ध्यान करती हुई स्वयंप्रभाने देवी पर्याय से छुट्टी पाई । जम्बूद्वीप केपूर्व विदेह क्षेत्र में कोई पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है । वज्रदन्त राजा उसका पालन करते थे । उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था । स्वयंप्रभा देवी स्वर्ग से चयकर इन्हीं राज दम्पती केश्रीमती नामकी पुत्री हुई । श्रीमती कि सुन्दरता देखकर लोग कहा करते थे कि इसे ब्रम्हाने चन्द्रमा की कलाओं से बनाया है । किसी समय श्रीमती छत केऊपर रत्नों केपलंग पर पडी सो रही थी । उसी समय वहांकेआकाश में जय जय शब्द करते हुए बहुत से दव निकले । वे देव पुंडरिकिणी पुरी केकिसी उद्यान में विराजमान यशोधर गुरू केकेवलज्ञान महोत्सव में शामिल होने के लियं जा रहे थे । उन देवों केआगे हजारो बाजे बजते जाते थे जिन का गम्भीर शब्द सब ओर फैल रहा था । देवों की जयजयकार और बाजों की उच्च ध्वनिसे श्रीमती की नींद खुल गई । नींद खुलते ही उसकी दृष्टी देवों पर पड़ी जिस से उसे उसी समय अपने पूर्व भवों का स्मरण हो आया । अब ललितांग देव उसकी आंखों केसामने झुकने लगा और स्वर्ग लोककी सब अनुभूत क्रियायें उसकी नजरमें आने लगीं । वह बार बार ललितांग देव का स्मरण कर विलाप करने लगी और विलाप करती करती मूर्च्छित भी होगयी सखियों ने अनेक शीतल उपचारो से सचेत कर उस से मूर्च्छित होने का कारण पुछा पर वह कुछ नहीं बोली केवल ग्रहग्रस्त की तरह चारों ओर निहारती रही, पुत्रीकी वैसी अवस्था देखकर राजा रानीको बहुत ही दु:ख हुआ । कुछ देर बाद उसकी चेष्टाओं से राजा वज्रदन्त समझ गये कि इसकेदु:ख का कारण इसकेपूर्वभव का स्मरण है और कुछ नहीं । उन्होंने यह विचार लक्षमीमती को भी सुनाया । इसकेबाद श्रीमती को समझाने केलिये एक पण्डिता नामकी धाय को नियुक्त कर राजा और रानी अपने स्थान पर चले गये ।

श्रीमती केपाससे वापिस आते ही राजा को पता चला कि आयुघशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है । और पुरू केबाह्य उद्यान में यशोधर महाराज केलिये केवलज्ञान प्राप्त हुआा है । दिग्विजय केलिये जाऊ या यशोधर महाराज केज्ञान कल्याण केमहोत्सव में शामिल होऊं इन दो विचारोंने राजाकी चित्तवृत्ति को क्षण एक केलिये दो भागों मे विभाजित कर दिया पर पहले धर्म कार्यो में कि शामिल होना चाहिए ऐसा विचार कर राजा वज्रदंत यशोधर महाराज केज्ञानोत्सव में शामिल होने केलिए गये । बन में पहुंच कर राजा वज्रदन्त यशोधर महाराज चरणों मे प्रणाम किया और अपना जन्म सफल माना । वहां विचित्र बात यह हुई थी की राजा ने ज्योंही पूज्य मुनिराज केचरणों में प्रणाम किया था त्योंही उसे अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था । अवधिज्ञान केप्रताप से राजा बज्रदन्त अपने तथा श्रीमती आदि केसमस्त पूर्वभव स्पष्ट रुपसे जान गये थे । जिस से वे श्रीमती केविषय में प्राय:निश्चिन्त हो गये थे । मुनिराज केपास से वापिस आकर वज्रदन्त चक्रवर्ती दिग्विजय केलिये गये ।

इधर पण्डिता धाय श्रीमती को घर केबगीचे मे ले जाकर अनेक तरह से उसका मन बहलाने लगी मौका देखकर पण्डिता ने उससे मूर्छित होने का कारण पूछा । अब की बार श्रीमती पण्डिताका आग्रह न टाल सकी, वह बोली च्सखी ! जब मैं छतपर सो रही थी तब वहांसे जयजय शब्द करते हुए कुछ देव निकले , उनकेदिग्विजय केकोलाहल से मेरी आंख खुल गई । जब मेरी निगाह उन देवों पर पड़ी तब मुझे अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया । बस, यही मेरे दु:ख का कारण है । में देखती हूं कि लज्जा से काम नहीं चलेगा इसलिए शमा करना में आज लज्जा का परदा फाड़कर अपनी मनोवृत्ती प्रकट करती हुं । सुनती हो न ?

धातकीखण्ड द्वीपकी पूर्व दिशा में जी मेरुपर्वत है उससे पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्रमें एक गान्धिल नामका देश है उसकेपाटलिंगाव में एक नागदत्त नामका वणिका रहता था । उसकी स्त्री का नाम सुदति था । इस वणिक दम्पति केनन्द,नन्दिमित्र,नन्दिषेण ,वरसेम और जयसेन नामकेपांच पुत्र तथा मदन कान्ता और श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियां थी । उन दो पुत्रियों में से मै छोटी पुत्री थी । लोग मुझको निर्नामिका भी कहा करते थे । किसी समय वहांकेअम्बर तिलक पर्वत पर पिहितास्त्रव नाम के एक मुनिराज आये । मैंन जाकर उनसे विनयपूर्वक पूछा कि भगवान् ! मैं इस दरिद्र कुल मे पैदा क्यों हुई हूं । तब मुनिराज बोले इसी गान्धिल देशकेपलाल पर्वत गांव मे एक देवल नामक मनुष्य रहता था उसकी स्त्री का नाम सुमति था । तुम पहले इसी केघर धनश्री नामसे प्रसिध्द लड़की हुई थी । एक दिन तुम्हारे बगीचे में कोई समाधिगुप्त नाम केमुनीश्वर आये थे सो तुमने उनकेसामने मरे हुए कुत्तेका कलेवर डाल दिया जिससे वे कुछ कृध्द हो गये । तब डरकर तुमने उनसे क्षमा मांगी । उस क्षमासे तुम्हारे उस पापमें कुछ न्यूनता हो गयी थी जिससे तुम इस दरिद्र कुलमें उत्पन्न हो सकी हो नहीं तो मुनियोंकेतिरस्कार से नरग गति में जाना पड़ता । यह कह चुकने केबाद मुनिराज पिहितास्त्रव ने मुझे जिनेन्द्र गुण सम्पत्ति और श्रुतज्ञान नाम केव्रत दिये जिन का मैंने यथाशक्ति पालन किया । उन व्रतों का

प्रभाव से मै मरकर ऐशान स्वर्ग में ललितांग देवकी अंगना हुई थी । वहां मेरा नाम स्वयंप्रभा था । हम दोनों एक दूसरे का बहुत अधिक चाहते थे । पर मेरे दुर्भाग्य से ललितांग देवकी मृत्यु हो - गयी । उनकी मृत्युसे मुझे बहुत ही दु:ख हुआ पर करती ही क्या ? जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते २ मैंने अपनी अवशेष आयु पूर्ण की और वहां से चयकर यह श्रीमती हुई हूं । देवों का आगमन देखकर आज मुझे ललितांग देव का स्मरण हो आया है बस , यही मेरे दु:ख का कारन है अब ललितांग के बिना मुझे एक क्षण भी वर्ष के समान मालूम होता है और यह दुष्ट काम अपने पैने वाणों से मुझको घायल कर रहा है । यह कहकर श्रीमती ने पण्डिता से कहा कि प्यारी सखि ! तुम्हारे होते हुए भी क्या मुझे दुख होगा ? चांदनी के छिटकने पर भी क्या कुमुदिनी दुखी होती है ? मेरा विश्वास है कि आप हमारे ललितांग की खोजकर उनके साथ मुझे-अवश्य ही मिला देवेगी । देखो, मैने इस पटियो पर अपने पूर्व भव के चित्र अंकित किए हैं । इन्हें दिखला कर आप सरलता से ललितांग की खोज कर सकती है । यह सुनकर पण्डिता धायने - श्रीमती को खूब आश्वासन दिया और इसके पास से चित्रपट लेकर ललितांग की खोज करने के- लिये चल दिया । वह सबसे पहले महापूत चैत्यालय को गई और वहां जिनेन्द्र देव को प्रणाम कर चित्रशाला मे चित्रपट फैलाकर बैठ गई । प्राय:चैत्यालय में सभी लोग आते थे इसलिये - पंडिता के अनोखे चित्रपट पर सभी की नजर पड़ती थी पर कोई उसका रहस्य नहीं समझ पाते थे । इसके बाद जो कुछ हुआ वह आगे लिखा जावेगा।

श्रीमती के पिता वज्रदन्त चक्रवर्ती जो कि श्रीमती का उक्त हाल होने के बाद दिग्विजय के लिए चले गए थे अब लौटकर वापिस आ गये । यद्यपि वे अपने समस्त शत्रुओं को जीत कर आये थे इसलिय प्रसन्न चित्त थे तथापि श्रीमती की चिन्ता उन्हें रहकर म्लान मुख बना देती थी । मौका पाकर वज्रदन्त ने श्रीमती को अपने पास बुलाकर कुशल प्रश्न पूछा और फिर कहने लगे की प्यारी बेटी ! मुझे यशोधर महाराज के प्रसाद से अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है इसलिये-में अपने, तुम्हारे और तुम्हारे प्रियभर्तार ललितांग देवके ही पूर्वभव जानने लगा हूं । मैं यह भई जान गया हूं कि तुम्हें देवों के देखने से अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया है । जिससे- तुम अपने ह्रदबल्लभ ललितांग दे का बारबार स्मरण कर दु:खी हो रही हो । पर अब निश्चिंत होओ और पहले की तरह आनन्द से रहो । तुम्हारा ललितांग पुष्कलावती दश के उत्पलखेट नगर में रहनेवाले वज्रबाहु और रानी वसुन्धरा के वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ है । जो कि हमारा भानेज है । उसके साथ तुम्हारा शीघ्र ही विवाह समबन्ध होने वाला है । इसी सिलसिले में राजा वज्रदन्त ने अपने, श्रीमती के और ललितांग देवके कितने ही पूर्वभवों का वृत्तान्त सुनाया था । जिन्हें सुनकर श्रीमती को अपार हर्श हुआ । मै आब बहनाई बज्रबाहु बहिन वसुन्धरा और भानेज वज्रजंघ को लेने के लिये जा रहा हूं । वे मुझ कुछ दुरी पर रास्तोंमे ही मिल जावेंगे यह कहकर चक्रवर्ती श्रीमती के पाससे गये ही थे कि इतने मे पण्डिता धाय , जो कि श्रीमती के चित्रपट लेकर ललितांग देवको खोजने के लिये गई हुई थी, हंसती हुई वापिस आ गई और श्रीमती के सामने एक चित्रपट रखकर बैठ गई । यद्यपि

पिता के कहनेसे उसे ललितांग देवका पूरा पता लग गया था तथापि उसने कौतुक पूर्वक पण्डिता से उसका सब हाल पूछा । उत्तरमें पण्डिता बोली-सखि ! मै यगां से तुम्हारा चित्रपट लेकर महापूत जिनालय को गई थी वहां जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर वहाँकी चित्रशाला में बैठ गई । मैने वहां पर ज्योंही तुम्हारा चित्रपट फैलाया त्योंही अनेक युवक क्या है ? क्या है ? कहकर उसे देखने लगे । पर उसका रहस्य किसीको समझमें नहीं आया । कुछ मनचले लोग उन्हें पान की इच्छासे झुठ मूठ ही उसका हाल बतलाते थें । पर मे उन्हें सहज ही में चुप कर देती थी । कुछ समय बाद वहां एक युवा आया जो देखने में साक्षात कामेश्वर सा लगाता था । उसने एक-एक कर के श्रामती के चित्रपट की समस्त हाल बतला दियां । देव समूह के देखने से यहां पर जैसी तुम्हारी अवस्था हो गई थी वहां चित्रपट देखने से ठीक वैसी ही अवस्था उसकी हो गई । वह देखते देखते मूर्च्छित हो कर जमिन पर गिर पड़ा । जब बन्धवर्ग ने उसे सचेत किया तब वह मुझे से पूछने लगा-भद्रे ! कहो, यह चित्रपट किसका है ? किस देव के मनोहर हाथों से इसका निर्माण हुआ है ? यह मुझे बहुत ही प्यारा लगता है । तब मैंने उस से कहा कि यह तुम्हारी मामी लक्ष्मीमती की पुत्री श्रीमती के कोमल हाथों से रजा गया है । मैंने उसकी चेष्टाओ से निश्चय कर लिया था कि यही ललितांग का जीव है । उसके बन्धुवर्ग से मुझे मालूम हुआ है कि वह पुष्कलावती देशके राजा वज्रबाहु का पुत्र है । लोग उसे बज्रजंघ नाम से पुकारते हैं। बज्रजंघ ने तुम्हारा चित्रपट अपने पास रख लिया है और यह दूसरा चित्रपट मेरे व्दारा तुम्हारे पास भेजा है । कैसा चित्रपट है सखि ? इतना कहकर पण्डिता चुप हो रही । श्रीमती ने कृतज्ञता भरी नजर से उसकी ओर देखा और फिर उस नूतन चित्रपट को ह्रदय से लगा लिया ।

इधर बज्रदन्त चक्रवर्ती की राजा बज्रबाहु बगैरह से रास्ते में ही भेंट हो गई । चक्रवर्ती, बहनोई बज्रबाहु, बहिन बसुन्धरा और भानजे बज्रजंघ को बड़े आदर सत्कार से लाअपने घर लिवा लाये । जब उन्हें घरपर रहते कुछ दिन हो गये तब चक्रवर्ती ने वज्रबाहु से कहा कि महाशय ! आप लोगों के आने से मुझे जो हर्ष हुआ है उसका वर्णन करना कठिन है । यदि आप लोग मुझपर प्यार करते है तो मेरे घर में आप के योग्य जो भी उत्तम वस्तु हो उसे स्वीकर कीजियेगा । तब वज्रबाहु ने कहा यद्यपि आप के प्रसाद से मेरे पास सब कुछ है-किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं है तथापि आपकी इच्छा है तो चिरंजीव बज्रजंघ के लिये आप अपनी पुत्री श्रीमती दे दीजियेगा । चक्रवर्ती तो यह चाहते ही थे उन्हों ने झटसे बहनोई की प्रार्थना स्वीकार कर ली और विवाहकी तैयारी करनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दे दी । सेवकों ने सुन्दर विवाह मण्डप बनाया तथा पुण्डरीकिणी पुरी को ऐसा सजाया कि उसके सामने इन्द्र की अमरावती भी लजाती थी । निदान शुभ मुर्हूत में वज्रजंघ और श्रीमती का विधिपूर्वक पाणिग्रहण हो गया । पाणिग्रहण के बाद वर-मधू अनेक जन-समूह के साथ महापूत चैत्यालय को गये और वहां जिनेन्द्र देव की अर्चा एवं स्तवन कर राज - मन्दिर को लौट आये । वहां चक्रमूर्ती के बत्तीस हजार मुकुटबध्द राजाओं ने वज्रजंघ और श्रीमती का स्वागत किया । विवाह के बाद वज्रजंघ ने कुछ समय तक अपनी ससुराल में ही रहकर

आमोद-प्रमोद से समय व्यतीत किया था। इस बीच में राजा वज्रभाहु ने अपनी अनुन्दरी नामकी पुत्री का चक्रवर्ती के ज्येष्ठ पुत्र अमिततेज के साथ विवाह कर दिया था। जब वज्रजंघ अपने घर वापिस जाने लगे तब चक्रवर्ती ने हाथी , घोडा, सोना, चांदी मणि मुक्ता आदि का बहुमूल्य दहेज देकर उन के साथ श्रीमती को बिदा कर दी । यद्यपि श्रीमती और वज्रजंघ के विरह से चक्रवर्ती की अन्तपुर में तथा सकल पुरवासी जम शोक से विव्हल हो उठे थे तथापि जिनका संयोग होता है उनका वियोग भी अवश्य होता है ऐसा सोचकर कुछ समय बाद शान्त हो गये थे। अनेक बन-उपवनोंकी शोभा निहारते हुए वजजंघ कुछ दिनों मे अपनी राजधानी उत्पलखेट नगरीके प्राप्त हुए । उस समय राजकुमार बज्रजंघ और उनकी नवविवाहिता पत्नी के शुभागमन के उपलक्ष्य में उत्पलखेट नगरी खूब सजाई गई थी । महलों की शिखरों पर कई रंगों की ध्वजाएं फहरा रही थीं और राजमार्ग मणियों की बन्दनमालाओ से- विभूषित किये गये थे । सडकों पर सुगन्धित जल सींचकर बेला,जुही चमेली आदी बिखेरे- गये थे । नववधू श्रीमती को देखने केलिये महलोंकी छतों पर स्त्रियां एकत्रित हो रही थी और जगह जगह पर नृत्य्, गीत वादित्र आदि के सुन्दर शब्द सुनाई पड़ते थें । वज्रजंघ ने श्रीमती के साथ राजभवन में प्रवेश किया । माता पिता के वियोग से जब कभा श्रीमती दुखी होता थी तब वज्रजंघ अपनी लीलाओ ओर रस भरे शब्दों से उसके दु:खको क्षण एकमें दूर कर देते थे । श्रीमती के साथ उसकी प्यारी सखी पण्डिता भी आई थी उसलिये वह श्रीमती को कभी दुखी नहीं होने देती थी । धीरे धीरे बहुत समय बीत गया उसी बीचेमें क्रम क्रमसे श्रीमती के पचास युगल अर्थात् सौ पुत्र हुए जो अपनी स्वाभाविक शोभा से इन्द्रपुत्र जयन्त को भीा शर्मिन्दा करते थे । उन सबसे वज्रबाहु और वज्रजंघ आदि ने अपने गृहस्थ जीवनको सफल माना था ।

किसी समय राजा वज्रबाहु मकान की छतपर बैठे हुय आकाश की सुषमा देख रहे थे । ज्योहीं वहां उन्होनें क्षण एक में विलीन होते हुयें मेघ खंड को देखा त्योंही उनके अन्तरंग नत्र खुल गये । वे सोचने लगे कि - संसार के सभी पदार्थ इसी मेघ खण्ड की तरह क्षणभंगुर हैं । मै इस राज्य विभूत को स्थिर समझकर व्यर्थ ही इसमें विमोहित हो रहा हूं । नवभव पाकर भी जिसने मोक्ष प्राप्ती केलिये प्रयत्न नहीं किया वह फिर हमेशा के लिए पछताता रहता है इत्यादी बिचार कर वज्रबाहु महाराज संसार से एक दम उदास हो गये और बहुत जल्दी वज्रजंघ के लिये राज्य दे , बनमें जाकर किन्ही आचार्य के पास दीक्षा लेकर तप करने लगे । उनके साथमें श्रीमती के सौ पुत्र, पण्डिता सखी, अनेक राजाओं ने भी जिनदीक्षा ग्रहण की थी । उधर मुनिराज वज्रबाहु कुछ समय बाद केवलज्ञान प्राप्त कर सदाकेलिये संसार के बन्धओं से छूट गये । और इधर पिता तथा पुत्रों के विरह से शोकातुर वज्रजंघ नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे । अब श्रीमती के पिता बज्रदन्त का भी कुछ हाल सुनिये ।

एक दिन चक्रवर्ती राजसभा मे बैठे हुये थे कि मालीने उन्हं एक कमल का फूल अर्पित किया । उस कमल की सुगन्धिसे चारों ओर भौरें मंडारा रहे थे । ज्योंही उन्होंने निमीलित कमल को विकसाने का प्रयत्न किया त्योंही उस कमल मे रुके हुए एक मृत भौरेंपर उनकी दृष्टी पड़ी । वह भौरा सुगन्धि के

लोभ से सायंकाल के समय कमल के भीतर बैठा हुआ था कि अचानक सुर्य अस्त हो गया जिस से वह उसी मे बन्द होकर मर गया था । उसे देखते ही चक्रवर्ती सोचने लगे कि जब यह भौरा एक नासिका इन्द्रियों के विषय में आसक्ती होकर मर गया है तब जो रात दिन पांचों इन्द्रियो के विषयों मे आसक्त हो रहे है वे क्या भौरेही तरह मृत्युको-प्राप्त न होवेंगे ? सच है - संसार मे इन्द्रियों के विषय ही प्राणियों की दु:खी किया करते हैं । मैंने जीवन भर विषय भोगे पर कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ । इत्यादी विचारकर उन्हेंाने जिनदीक्षा धारण करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया । चक्रवर्ती ने अपने बड़े पुत्र अमिततेज के लिये- राज्य देना चाहा पर जब उसने और उसके छोटे भाईने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने- अमिततेज के पुण्डरीक नामक पुत्र के लिये जिसकी आयु उस समय सिर्फ छह महा की थी राज्य दे दिया और आप अनेक राजाओं पुत्रो तथा पुरवासियों के साथ दीक्षित हो गये चक्रवर्ती और अमिततेज के विरह से सम्राज्ञी लक्ष्मीमती तथा अनुन्दरी आदिको बहुत दु:ख हुआ । कहां चक्रवर्ती का विशाल राज्य और कहां छह माहका अबोध बालक पुण्डरीक अब इस राज्य की रक्षा किस तरह होगी ? इत्यादी विचार कर लक्ष्मीमती ने दामाद वज्रजंघ के लिये एक पत्र लिखा और उसे एक पिटारे में बन्दकर चिन्तागति तथा मनोगति नाम के विद्याधर दूतों के द्वरा उनके पास भेज दिया । जब वज्रजंघ ने पिटारा खोलकर उसमें का पत्र पढ़ा तब उन्हें बहुत दु:ख हुआ । श्रीमती के दु:ख का तो पार ही नहीं रहा । वह पिता और भाइयों का स्मरण कर विलाप करने लगी । पर राजा बज्रजंघ संसार की परिस्थिति से भली भांति परिचित थे इसलिये उन्होंने किसी तरह अपना शोक दुर कर श्रीमती को धीरज बंधाया, और मै आता हूं कह कर उन विद्याधर दूतो- को वापिस भेज दिया । कुछ समय बाद राजा बज्रजंघ और श्रीमती ने पुण्डरीक पुरी की ओर प्रस्थान किया । उनके साथ महामन्त्री मतिवर, पुरोहित आनन्द, सेठ धनमित्र, और सेनापति अकम्पन भी थे । इन सबके साथ हाथी, घोडा,रथ,प्यादे आदि से भरी हुई विशाल सेना थी । चलते चलते बज्रजंघ किसी सुन्दर सरोवर के पास पहुंचे । वहां चारों ओर सेना को - ठहराकर स्वंय श्रीमती के साथ अपने तम्बू में चले गये । इतने में यदि बन में आहार मिलेगा तो लेवेंगे , गांव नगर आदि मे नहीं ऐसी प्रतिज्ञा कर दो मुनिराज आकाश में बिहार करते हुए वहां से निकले । जब उन मुनियों पर राजा की दृष्टी पड़ी तब उसने उन्हें भक्ति सहित पड़गाहा और श्रीमती के साथ शुध्द सरस आहार दिया वहां से निकले । और श्रीमती के साथ शुध्द सरस आहार दिया । जब आहार लेकर मुनिराज बन की ओर विहार कर गये तब राजा वज्रजंघ से उनके पहरेदार ने कहा कि महाराज ! ये युगल मुनि आपके- सबसे लघु पुत्र हैं । आत्मशुध्दि के लिये हमेशा बन में रहीं रहते है । यहांतक कि आहारके लिये भी नगर में नहीं जाते । यह सुनकर वज्रजंघ और श्रीमती के शरीर मे हर्षके रोमांच निकल आये । वे दोनों लपक कर उसी ओर गये जिस ओर कि मुनिराज गये थे ।

निर्जन बन मे एक शिलापर बैठे हुए मुनि युगल को देखकर राजदम्पती के हर्ष का पार नहीं रहा । राजा रानीने भक्ति से मुनिराज के चरणों अपना माथा झुका दिया तथा विनय पूर्वक बैठकर उनसे गृहस्थ

धर्म का व्याख्यान सुना । इसकेबाद अपने और श्रीमतीकेपुर्वभव सुनकर राजाने पूछा- ङहे मुनिराज ! ये मतिवर, आनन्द,धनमित्र,और अकम्पन मुझसे बहुत प्यार करते - है । मेरा भी इन मे अधिक स्नेह है, इसका क्या कारण है ? उत्तरमें मुनिराज बाले ङ राजन ! अधिकतर पूर्वभवका संस्कारों से ही प्राणियों में परस्पर स्नेह या द्वेष रहा करता है । आपका भी इनकेसाथ पूर्वभवका सम्बन्ध है । सुनिये, मै इनकेपूर्वभव सुनाता हूं ।

जम्बूद्वीप केपूर्व विदेह क्षेत्र मे एक वत्सकावती देश है उस में प्रभाकारी नामकी एक सुन्दर नगरी है । वहां केराजाका नाम नरपाल था । नरपाल हमेशा आरम्भ परिग्रह में लीन रहता था इसलिये वह मरकर पंकप्रबा नामकेनरकमें नारकी हुआ । वहां दश सागर पर्यन्त अनेक दु:ख भोगता रहा । फिर वहां से निकलकर उसी नगरीकेपास मे विद्यमान एक सागर पर्वतपर शार्दूल हुआ । किसी समय उस पर्वतपर वहां केतात्कालिक राजा प्रीतिवर्धन अपने छोटे भाईकेसाथ ठहरे हुए थे । राजा पुरोहितने उनसे कहा - यदि आप इस पर्वतपर मुनिराजकेलिये आहार देवें- तो विशेष लाभ हौगा । जब राजाने पुरोहित से कहा कि इस निर्जन पहाडपर कोई मुनि आहार केलिये क्यों आवेगा ? तब कहा कि तुम नगरी केसमस्त रास्ते सुगन्धित जलसे- सिंचवाकर उन पर ताजे फूल बिछवा दो अर्थात् नगरी को इस तरह सजवा दो कि जिससे कोई निर्ग्रन्थ मुनि उसमें प्रवेश न कर सकें । क्योंकि वे अप्रासुक भूमिपर एक कदम भी नहीं रखते । तब कोई मुनि आहार केलिये नगर में न जाकर इसी ओर आवेंगे सो आप पड़गाहकर उन्हें- विधि पूर्वक आहार दे सकते है । राजा प्रीतिवर्धन ने पुरोहित केकहे अनुसार ऐसा ही किया जिस से एक पिहितास्त्रव नामकेमुनि नगरी को बिहार केअयोग्य समझकर बन में आहार मिलेगा तो लेवेंगे अन्यथा नहीं ऐसा संकल्प कर उसी पर्वत की ओर गये जहांपर राजा प्रीतिवर्धन मुनिराज की प्रतीक्षा कर रहे थे । मुनिराज को आते हुए देखकर राजा ने उन्हें भक्ति पूर्वक पड़गाहा और उत्तम आहार दिया । पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने वहांपर रत्नों की वर्षा की रत्नों को बरसते देखकर मुनिराज पिहितास्त्रव ने राजा से कहा है धरारमण ! दान केवैभव से बरसती रत्नधारा को देखकर जिसे जाति स्मरण हो गया है ऐसा एक शार्दूल इसी पर्वतपर सन्यासवृत्ति धारण किये हुए है सो तुम उसकी योग्य रीति से परिचर्या करो । वह आगे चलकर भरत क्षेत्र मे प्रथम तीर्थकर वृषभनाथ का प्रथम पुत्र सम्राट भरत होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ।

मुनिराज केकहे अनुसार राजाने जाकर उस शार्दूल की खूब परिचर्या की और मुनिराज ने स्वंय पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया । जिससे वह अठारह दिन बाद समता परिणामों से मरकर ऐशान स्वर्ग के दिवाकरप्रभ विमान में दिवाकर देव हुआ । पात्रदान केतात्कालिक अभ्युदय से चकित होकर प्रीतिवर्धन राजा केसेनापति, मन्त्रि और पुरोहितने भी अत्यन्त शान्त परिणामों से राजाकेद्वारा दिये गये मुनिदान की अनुमोदना की जिस केप्रभाव से तीनों मरकर कुरुक्षेत्र उत्तम भोगभूमि में आर्य हुए । और वहां की आयु पूर्णकर ऐशान स्वर्ग केप्रभा , कांचन और रुषित नाम केविमानों में क्रम से प्रभाकर , कनकाभ और

प्रभञ्जन नाम के देव हुए । जब आप ऐशान स्वर्ग में ललितांग देव थे तब ये सब तुम्हारे परिवार के देव थे । वहां से चय कर वह शार्दूल का जीव दिवाकर देव श्रीमती और सागर का लड़का होकर मतिवर नामका आपका मन्त्री हुआ है । कनकप्रभ का जीव अनन्तमति और श्रुतकीर्तिका सुपुत्र होकर आप का आनन्द नामधारी पुरोहित हुआ है । प्रभाकर का जीव, अजीव और अपराजित सेनानी का पुत्र होकर अकंम्पन नाम से प्रसिध्द आपका सेनापति हुआ है और प्रभंजन का जीव धनदत्त एवं धनदत्ता का पुत्र होकर धनमित्र नामसे प्रसिध्द आपका सेठ हुआ हैं । बस, इस पूर्वभव के बन्धन से ही आपका इनमें और इनका आप में अधिक स्नेह है । इस तरह मुनिराज के मुखसे मतिवर आदिका परिचय पाकर श्रीमती और वज्रजंघ बहुत ही प्रसन्न हुए । उस निर्जन बन में राजा और मुनिराज के बीच जब यह सम्वाद चल रहा था तब वहां नेवला, शार्दूल, बन्दर और सुअर ये चार जीव मुनिराज के चरणों मे अनिमेष दृष्टी लगाये हुए थे । वज्रजंघने कौतुकवश मुनिराज से पूछा - हे तपोनिधी ! ये नकुल आदि चार जीव आपकी और टकटकी लगाये क्यों बैठे हैं ? तब उन्होंने कहा -सुनिये, यह व्याघ्र पहले इसी देश में शोभायमान हस्तिनापुरमें धनवती सागरदत्त नामक वैश्य दम्पति के उग्रसेन नामक पुत्र था । यह क्रोधी बहुत था इसलिए इसने अपने जीवन में तिर्यंच आयुका बन्ध कर लिया था । उग्रसेन वहां के राजभण्डार का प्रधान कार्यकर्ता था इसलिए वह दूसरे छोटे नौकरों को दबाकर भण्डार से घी चावल आदि वस्तुएं वेश्याओं के लिये दिया करता था । जब राजा को इस बात का पता चला तब उसने- उसे पकड़वा कर खूब मार लगवाई जिससे वह मर कर यह व्याघ्र हुआ है ।

यह सुअर पुर्वभव में विजय नगर के वसन्तसेना और महानन्द नामक राजा-दम्पतिका हरिवाहन नाम से प्रसिध्द पुत्र था । हरिवान अधिक अभिमानी था , वह अपने सामने किसी को- कुछ भी नहीं समझ ाता था । यहां तक कि पिता वगैरह गुरुजनोंकी भी आज्ञा नहीं मानता था । एक दिन इसके पिताने इसे कुछ आज्ञा दी जिसे न मानकर इसने पत्थर के खम्भेसे अपना सिर फोड़ लिया और उसकी व्यथा से मरकर यह सुअर हुआ है ।

यह बन्दर अपने पहले भव में धान्य नगर के सुदत्ता और कुबेर नामक वेश्य- दम्पति का नागदत्त नाम से प्रसिध्द पुत्र ता । यह बड़ा मायावी था , इसका चित्त हमेशा छल-कपट करने में लगा रहता था । किसी समय इसकी माँ ने अपनी छोटी लड़की की शादीके लिये दूकाम में से कुछ धन ले लिया जिसे यह नहीं देना चाहता था । इसने माँ से धन लेने के लिये अनेक उपाय किये पर वे सब निष्फल हुए । अन्त में इसी दु:खी से मरकर यह बन्दर हुआ है ।

और यह नेवला भी पहले भव मे सुप्रतिष्ठित नगर में कादम्बिक नामका पुरू ष था । कादम्बिक बहुत लोभी था । किसी समय वहां के राजाने जिन मन्दिर बनवाने के कामपर इसे नियुक्त किया । सो यह ईट लानेवाले पुरुषों को कुछ धन देकर बहुत कुछ ईटें अपने घर डलवाता जाता था । भाग्यवश इसी कुछ ईटों में इसे सोने की शलाकायें मिल गयीं जिससे- इसका लोभ और भी अधिक बढ् गया । कादम्बिक

को एक दिन अपनी लड़की की ससुराल जाना पड़ा सो वह बतदले मे मन्दिरके कामपर अपने पुत्र को नियुक्त कर गया था और उससे- कह भी गया था कि मोका पाकर कुछ ईटें अपने घरपर भिजवाते जाना । परन्तु पुत्रने यह पापका काम नहीं किया । जब कादम्बिक लौटकर वापिस आया और मालूम हुआ कि लड़के ने हमारे- कहें अनुसार घरपर ईंटें नहीं डलवाई है तब उसने उसे खूब पीटा और साथ में यदि ये पावं न होते तो मै लड़की की ससुराल भी न जाता ऐसा सोचकर अपने पांव भी काट लिये । जब राजा को इस बातका पता चला तब उसने इसे खूब पिटवाया जिससे मर कर वह नेवला हुआ है ।

आज आपने जो मुझ आहार दिया है उसका वैभव देखने से इन सबको अपने पूर्व भवों का स्मरण हो गया है जिससे ये सब अपने कुकर्मोपर पश्चाताप कर रहे हैं । इन सबने- आज पात्रदान की अनुमोदना से विशेष पुण्यका संचय किया है इसलिये ये मरकर उत्तर भोग-भूमि कुरक्षेत्र में पैदा होवेंगे । ये सब आठ भवों तक आपके साथ स्वर्ग एवं मनुष्योंके सुख भोगकर संसार बन्धन से मुक्त हो जावेंगे । हां, और इस श्रीमतीका जीव आपके तीर्थ में दान तीर्थकार चलाने वाला क्षेयांसकुमार होग तथा उसी पर्याय से मोक्ष श्रेयांस प्राप्त करेगा ऽ

इस तरह मुनिराज के सुभाषित से राजा बज्रजंघ और रानी श्रीमती को जो आनन्द हुआ था उसका वर्णन करना कठिन है । दोनों राज दम्पति मुनिराजको नमस्कार कर अपने तम्बूकी ओर चले आये और मुनि युगल भी अनन्त आकाश मे बिहार कर गयें । बज्रजंघ ने वह दिन उसी सरोवर केकिनारे पर बिताया । फिर कुछ दिनोंतक चलने के बाद समस्त सेना और परिवार के साथ पुण्डरीकिणी पुरू में प्रवेश किया । वहां उन्होंने शोकसे आक्रान्त लक्ष्मीपती और बहिन अनुन्दरी को समझाकर बालक पुण्डरीक का राज्य -तिलक किया तथा जबतक पुण्डरीक, राज्यकार्य संभालनेके लिये योग्य न हो जावे तबतक के लिये विश्वस्त वृध्द मन्त्रियों के जिम्मे राज्य का भार सौंप दिया । इस तरह कुछ दिन पुण्डरीकिणी पुरी में रहकर परिवार और सेनाके साथ अपने- उत्पलखेट नगर को लौट आये । प्रजाने राजा बज्रजंघ केशुभागमनकेउपलक्ष मे राजधानी की खूब सजावट की थी ।

एक दिन रात के समय वज्रजंघ और श्रीमती जिस शयनागार में सो रहे थे उस में सब ओर चन्दन आदिकी सुगन्धित धूपका धुंवा फैल रहा थां । दुर्भाग्य से उस दिन नौकर वहां कि खिड़कियां खोलना् भूल गया जिससे वह धुवां वही संचित होता रहा । उसी धुंए मे अचानक राज-दम्पतिका श्वास रुक गया और वे दोंनों सदा केलिये सोते रह गये । जब सबेरे राज और रानीकी आकस्मिक मृत्यु का समाचार नगर मे ं फैला तब समस्त नगरवासी हा हा कार करने लगे । सभी और शोक के चिन्ह दिखाई देने लगे । अन्त:पुरकी स्त्रियों के करुणा किलाप से -सार आकाश गुंज उठा । पर किया क्या जाता ? होनहार अमिट थी । अब पाठकों को अधिक न रुलाकर आगे एक सुन्दर क्षेत्रमें लिये चलता हूं ।

जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से उत्तर की और एक उत्तर कुरु नाम का सुहावना क्षेत्र है । वह क्षेत्र खूब हरा भार रहता है ।वहां दस तरह केकल्पवृक्ष है जो कि वहां केमनुष्यों को हरएक प्रकास की खाने ,

पीने ,पहनने, रहने आदि को सुन्दर सामग्री दिया करते है । वहां स्वच्छ जल से भरे हुए सुन्दर सरोवर है । जिनमें बड़े बड़े कमल फूल रहे है । बनकी भूमि हरी - हरी घाससे शोभायमान है । वहां के नर नारियों तथा पशु- पक्षियोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु होती है और जीवन भर कभी किसी को कोई बीमारी नहीं होती । यदि संक्षेप से वहां केमनुष्यों के- सुखोंका वर्णन पूछा जावे तो यही उत्तर पर्याप्त होगा कि वहां के मनुष्यों को जो सुख है वह कहींपर नहीं है और जो सब जगह हे उससे बढ़कर वहां है । जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे विभूषित उत्तम-पात्र मुनियोंके लिये भक्तिसे आहार देते है वे ही मरकर वहां जन्म लेते है । वज्रजंघ और श्रीमता ने भी पुण्डरीकिणी पुरी को जाते समय सरोवर के तटपर मुनि युगल केलिये आहार दान दिया था इसलिये वे दोनों मरकर ऊपर कहे हुए उत्तर कुरू क्षेत्र में उत्तम आर्य हुए । जिनका कथन पहले कर आये हैं वे नेवला, व्याघ्र, सुअर और बन्दर भी उसी कुरुक्षेत्र में आर्य हुए । कारण कि उन सबने मुनिदान की अनुमोदना की थी । वहांपर वे सब मनवांछित भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे ।

इधर उत्पलेखट नगरमें वज्रजंघके विरहसे मतिवर, आनन्द., धनिमत्र और अकम्पन पहले तो बहुत दु:खी हुए, फिर बाद मे दृढ़धर्म नामक मुनिराज के पासमें जिनदीक्षा धारण कर उग्र तपश्चर्या के प्रभावसे अधोग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए ।

एक दिन उत्तर कुरू क्षेत्र मे आर्य और आर्या जो कि वज्जंघ और श्रीमती केजीव थे , कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे कि इतने मे वहांपर आकाश मार्ग से विहार करते हुए दो मुनिराज पधारे । आर्य दम्पतिने खडे होकर उनका स्वागत किया और चरणों में नमस्कार कर पूछा- ऐ मुनीन्द्र ! आप लोगोंका क्या नाम है ? कहांसे आ रहे है ? और इस भोग भूमिमें किस लिये घूम रहे हैं । आप की शान्तमुद्र देखकर हमारा ह्रदय भक्तिसे- उमड़ रहा है । कृपा कर कहिये , आप कौन है ? यह सुनकर उन मुनियों में जो बडे मुनि थे बोले- आर्य ! पूर्वकाल मे जब तुम महाबल थे तब मैं आपका स्वयंबुध्द नामका मन्त्री था । मैंने ही आपको जैन धर्मका उपदेश दिया था । जब आप बाईस दिनका सन्यास समाप्त कर स्वर्ग चले गये थे तब आपके विरहसे दु:खी होकर मैंने जिनदीक्षा धारण कर ली थी जिसके प्रभावसे मैं आयुकेअन्तमें मर कर सौधर्म स्वर्गके स्वंयप्रभ विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ था । वहांसे चयकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशमें स्थित पुण्डरीकिणी नगरी में सुन्दरी और प्रियसेन नामके राज-दाम्पतिके प्रीतिकार नामसे प्रसिध्द ज्येष्ठ हुत्र हुआ हूं । मैं प्रीतिदेव नामक अपने छोटे भाईके साथ अल्प वय में ही स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के समीप दीक्षित हो गया था । तीव्र तपके प्रभाव से हम लोगों को आकाश में चलने की शक्ति और अवधिज्ञान प्राप्त हो गया है ।

जब मुझे अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि आप यहांपर उत्पन्न हुए हैं तब मैं आपको धर्मका स्वरुप समझाने के लिये यहां आया हूं । यह दूसरा मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है । ऐ भव्य ! विषयाभिलाषा की प्रवलतासे महाबल पर्याय में तुम्हें निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था इसलिये आज निर्मल दर्शन को

धारण करो । यह दर्शन ही संसारके समस्त दु:खों को दूर करता है जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों तथा दयामय धर्मका सच्चे दिलसे विश्वास करना सो सम्यग्दर्शन है । हमेशा नि:शंक रहना भोगों से उदास रहना, ग्लानिका जीतना, विचार कर कार्य करना, दूसरों के दोष छिपाना, गिरते हुएको सहारा देना, धर्मात्माओं से प्रेम रखना और सम्यग्ज्ञान का प्रचार करना ये उसके आठ अंग हैं । प्रशम. संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव उसके गुण हैं । इस तरह आर्यको उपदेश देकर प्रीतिंकर महराजने आर्यासे भी कहा-अम्बे ! मैं स्त्री हूं इसलिये यह कुछ नहीं कर सकती यह सोचकर दुखी मत होओ । सम्यग्दर्शन तो प्राणी मात्रका धर्म है उसे हर कोई धारण कर सकता है ।

मुनिराज के उपदेश से आर्य और आर्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी आत्माओंको निर्मल सम्यग्दर्शन से विभूषित किया काम हो चुकने के बाद मुनिराज आकाश मार्गसे विहार कर गये । कुछ समय बाद आयु पूर्ण होनेपर वज्रजंघका जीव आर्य ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमान में- श्रीधर नामका देव हुआ और श्रीमती आर्याका जीव उसी स्वर्ग के स्वयंप्रभ विमान में स्वयंप्रभ नामका देव हुआ । शार्दूल व्याघ्रका जीव उसी स्वर्ग के चित्रागंद नाम का सुअरका जीव नन्द विमान में मणिकुण्डली नामका, वानरका जीव नंद्यावर्त विमान में मनोहर नामका और नेवले- का जीव प्रभाकर विमान मे मनोरथ नामका देव हुआ । वहां ये सब पुण्यके प्रताप से अनेक तरहकेभोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे । किसी समय स्वयंबुध्द मन्त्री के जीव प्रीतिंकर मुनिराज को-जिनने अभी उत्तर कुरुक्षेत्र मे आर्य आर्याको सम्यग्दर्शन प्राप्त कराया था श्रीप्रभ पर्वतपर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । सभी देव उनकी वंदना के लिये गये । श्रीधर देवने भी जाकर अपने- गुरू केवली भगवान प्रीतिंकर को भक्ति सहित नमस्कार किया और फिर धर्मका स्वरुप सुननेकेबाद पूछा भगवन् !

महाबल भव मे जो मेरे सम्भिन्नमति, शतमति और महामति नामके तीन मिथ्यादृष्टी मन्त्री थे वे अब कहां पर हैं ? उन्होंने कहा कि संभिन्न मति और महामति निगोद राशि में उत्पन्न होकर अचिन्त्य दुख भोग रहे हैं । और शतमति मिथ्याज्ञान के प्रभाव से दूसरे नरक में कष्ट पा रहा है । जो जैसा कार्य करता है वैसा फल पाता है ।

यह सुनकर श्रीधर देवको बहुत ही दुख हुआ । वह संभिन्नमति और महामति के विषय मे तो कर ही क्या सकता था ? हां , पुरुषार्थ से शतमति को सुधार सकता था इसलिये झटसे दुसरे नरक में गया । वहां अवधिज्ञानसे शतमति मन्त्री के जीव नारकीको पहिचान कर उससे- कहने लगा- क्यों महाशय ! आप मुझे पहिचानते है ? मैं विद्याधरोंका राज महाबलका जीव हूं । मिथ्याज्ञानके कारण आपकों ये नरकके तीव्र दु:ख प्राप्त हुए है । अब यदि इनसे छुटकारा चाहते - हो तो सम्यदर्शन और सम्यग्ज्ञानसे अपने आपको अलंकृत करो । श्रीधर के उपदेश से नारकी शतमतिने शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण कर लिया सम्यग्दर्शन के प्रभावसे उसका समस्त ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो गया । श्रीधर देव कार्यकी सफलतासे प्रसन्न चित्त होता हुआ अपने स्थानपर वापिस लौट आया । वह शतमतिका जीव नारकी भी नरककी आयु

पूर्णकर पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्ध भाग में विशोभित पूर्व विदेह सम्बन्धी मंगलावती देश में स्थित रत्नसंचय नगर में रहने वाले सुन्दरी और मनोहर नामक राज - दम्पति के जयसेन नामका पुत्र हुआ । जिस समय जयसेन का विवाह होने- वाला था उसी समय श्रीधर देवने जाकर समझाया और नरक के समस्त दु:खों की याद दिलाई । जिससे उसने विरक्त होकर कमधर मुनिराज के पास दीक्षा ले ली । और कठिन तपश्चर्या के प्रभावसे मरकर पांचवें स्वर्ग में ब्रह्मेन्द्र हुआ । ब्रह्मेन्द्रने जब अवधिज्ञान से अपने उपकारी श्रीधर देवका परिचय प्राप्त किया तब उसने पास जाकर विनम्र और मीठे शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट की ।

कुछ समय बाद श्रीधर देव स्वर्गसे चयकर जम्बूद्वीपके विदेह सम्बन्धी महावत्सकावती देश मे स्थित सुसीमा नगरीके सुदृष्टि और सुनन्दा नामक राजदम्पतिके सुविधा नामका पुत्र हुआ । वहा सुविधि बहुत ही भाग्यशाली ओर बुध्दीमान लड़का था । अभयघोष चक्रवर्ती उसके मामा थे । चक्रवर्तीके मनोहरा नामकी एक सुन्दरी कन्या थी जो सचमुच में मनोहरा ही थी । राजा सुदृष्टि योग्य अवस्था देखकर सुविधि का मनोहरा के साथ विवाह करवा दिया जिससे वे दोंनों विविध भोंगों को भोगते हुए सुख से समय बिताने लगे । कुछ समय बाद राजा सुदृष्टि राज्यका भार सुविधि के लिये सौंपकर मुनि हो गये । सुविधि राज्य कार्य में बहुत ही कुशल पुरुष था जिससे उसकी धवलकीर्ती चारों ओर फैल गई थी ओर समस्त शत्रुओं की सेना अपने आप वश में हो गई थी ।

काल पाकर सुविधि राजा के केशव नामका पुत्र हुआ । सुविधि राजाकी वज्रजंघ पर्याय में जो श्रीमती का जीव था वह भोग भुमिके भोग भोग चुकनेके बाद दूसरे स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका देव हुआ था । वही जीव राज सुविधिके केशव नामका पुत्र हुआ था । पूर्वभवके संस्कारसे , राजाका उसमें अधिक स्नेह रहता था । शार्दूलका जीव चित्रांगद भी स्वर्गसे चयकर इसी देश में विभीषण राजा कि प्रियदत्ता पत्नीसे वरदत्त नामका पुत्र हुआ । सुअरका जीव मणि कुण्डली देव अनन्तमति और नन्दिषेण नामक राजदम्पतिके चित्रांगद नामका देव पुत्र हुआ और नकुलका जीव मनोरथ देव चित्रमालीनी और प्रभंजन नामक राजदम्पतिके मदन नामसे, प्रसिध्द लड़का हुआ ।

कुछ समय बाद चक्रवर्ती अभयघोषने अठारह हजार राजाओं के साथ विमलवाहन नामक मुनिराज के पास जिनदीक्षा ले ली । वरदत्त, वरसेन, चित्रागंद और मदन भी चक्रवर्ती के साथ दीक्षित हो गये थे । पर सुविधि राजाका अपने केशव पुत्र में अधिक स्नेह था इसलिये- वे घर छोड़कर मुनि न हो सके किन्तु उत्कृष्ट श्रावक के व्रत रखकर घरपर ही धर्म सेवन करते रहे । और आयुके अन्त समय में महाव्रत धारण कर कठिन तपस्या के प्रभाव से सोलहवें अच्युत स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुए । पिताके वियोग से दु:खी केशवने भी जिनदीक्षा की शरण ली । वह आयुके अन्तमें मरकर उसी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हूआ । तथा वरदत्त आदि राजपुत्र भी अपनी तपस्याके प्रभावसे उसी स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए । इन सभी की विभूति इन्द्र के समान थी । वहां अच्युतेंन्द्र की बाईस सागर प्रमाण आयु थी । बाईसे हजार वर्ष बीत जाने पर आहार की अभिलाषा होती थी , सो शीघ्र ही कण्ठ में अमृत झर जाता था, बाईसे पक्ष में एक बार श्वासोछ्वास

होता था । उसका शरीर तीन हाथ ऊंचा था । वह सोने सा चमकता था । मनमें इन्द्राणी का स्मरण होते ही उसकी काम सेवन की इच्छा शान्त हो जाती थी । कहने का मतलब यह है वह हर एक तरह से सुखी था ।

आयुके अन्तमें वह अच्युतेन्द्र स्वर्ग से चयकर जम्बूद्वीप-सम्बन्धी पूर्व विदेह में स्थित पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में श्रीकान्त और वज्रसेना नामक राजदम्पति के पुत्र हुआ । वहां उसका नाम वज्नाभि था । वरदत्त, वरसेन, चित्रांगग और मदन जोकि अच्युत स्वर्ग में सामानिक देव हुए थे वहां से चयकर क्रमसे वज्रनाभिके विजय. वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के लघु सहोदर-छोटे भाई हुए । और केशव जो कि सोलह वे स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ था वहां से चयकर इसी पुण्डरीकिणी पुरी में कुवरदत्त तथा अनन्तमती नामक वैश्य दम्पति के धनदेव नामका लड़का हुआ । वज्रनाभि के वज्रजंघ भव में जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नाम के मन्त्री, पुरोहित, सेठ और सेनापति थे वे मरकर अधोग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए थे वे भी वहांसे चयकर वज्रनाभिके भाई हुए । वहां उनके सुबाह, महाबाहु पीठ और महापीठ नाम रक्खे थे । इस तरह ऊपर कहे हुए दशों बालक एक साथ खेलते, बैठते उठते , लिखते और पढ़ते थे क्योंकि उन सबका परस्पर में बहुत प्रेम था । राजपुत्र वज्रनाभि का शरीर पहले सा सुन्दर था पर जवानी केआने पर वह और भी अधिक सुन्दर मालूम होने लगा था ।

उस समय उसकी लम्बी और स्थूल भुजाएं ,चौड़ा सीना . गम्भीर नयन तथा तेजस्वी चेहरा देखते ही बनता था । एक दिन वज्रनाभि केपिता वज्रसेन महाराज संसार केविषायों से उदास होकर वैराग्य का चिन्तवन करने लगे उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनकेविरक्त विचारों का समर्थन किया जिस से उनका वैराग्य और भी आधिक बढ़ गया । अन्तमें वे ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभि को राज्य देकर हजार राजओ केसाथ दीक्षित हो गये ओर कठिन तपस्याओं से केवलज्ञान प्राप्त कर अपनी दिव्य वाणीसे पथ-भ्रान्त पुरुषों को सच्चा मार्ग बतलाने लगे और कुछ समय बाद आठों कर्मो को नष्टकर मोक्ष स्थानपर पहुंचे गये । इधर वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ जिस में एक हजार आरे थे और जो कान्ति से सहस्त्र किरण सूर्य-सा चमकता था । चक्ररत्न को आगे कर राजा दिग्विजयकेलिये निकले और कुछ समय बाद दिग्विजयी होकर लौट आये । अब बज्रनाभि चक्रवर्ती कहलाने लगे थे । उनका प्रताप और यश सब ओर फैल रहा था । उस समय वहां उनसा सम्पत्तिशाली पुरुष दूसरा नहीं था । जो केशव (श्रीमती का जीव) स्वर्ग से चयकर उस पुण्डरीकिणी पुरी में कुवेरदत्त और अनन्तमती नामक वेश्य-दम्पति केधनदेव नामका पुत्र हुआ था वह वज्रनाभि का गृहपति नामक रत्न हुआ । इस प्रकार नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी सम्राट वज्रनाभि का समय सुख रत्न से बीतने, लगा । किसी समय महाराज बज्रनाभि का चित्त संसार से विरक्त हो गया जिससे वे अपने-बज्रदन्त पुत्र को राज्य का भार सौंपकर सोलह हजार राजाओं , एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेव केसाथ तीर्थकर देव केसमीप दीक्षित होकर तपस्या करने लगे । वज्रनाभि ने वहींपर दर्शन विशुध्द विनय सम्पन्नता , शीलव्रतों में अतिचार नहीं लगाना, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखना , संवेग, शक्त्यानुसार तप और त्याग , साधु समाधि वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति. बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि मार्ग प्रभावना और प्रवचन वासल्य इन सोलह भावानाओं का चिंतवन किया जिससे उन्हें तीर्थकर प्रकृति का बन्ध हो गया । आयु केअन्त समय में वे श्रीप्रभ नामका पर्वत की शिखर पर पहुंचे और वहां शरीर से ममत्व छोड़कर आत्म्-समाधि में लीन हो गये । जिस केफलस्वरुप नश्वर मनुष्य देह को छोड़कर सर्वार्थ सिध्दि मे अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी । और शरीर एक हाथ ऊंचा सफेद रंगका था । वे कभी संकल्प मात्र से प्राप्त हुए जल चंदन आदि से जिनेन्द्र देवकी पूजा करते और कभी अपनी इच्छासे पास में आये हुए अहमिन्द्रों केसाथ तत्व चर्चाए करते थे ।

तेतीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें आहार की अभिलाषा होती थी सो भी तत्काल कण्ठ में अमृत झर जाता था । जिससे फिर उतने ही समयकेलिए निश्चिन्त हो जाते थे । उनका श्वासोच्छ्वास भी तेतीस पक्ष में चला करता था । संसार में उन जैसा सुखी कोई दूसरा नहीं था । यह अहमिन्द्र ही आगे चलकर कथा नायक भगवान वृषभनाथ होगा । विजय, वैजयनत जयन्त, अपराजित, सुवाहु, महाबाहु, बाहु, पीठ महापीठ और धनदेव भी जो इन्हीं केसाथ दीक्षित हो गये थे । आयु केअन्त में सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थ सिध्दि विमान में अहमिन्द्र हुए थे । इन सबका वैभव वगैरह भी अहमिन्द्र वज्रनाभि के समान था । ये सभी भगनाव वृषभदेव केसाथ माक्ष प्राप्त करेंगे ।